इकाई 16 समाज और अर्थव्यवस्था

इकाई की रूपरेखा

16.0 उद्देश्य
16.1 प्रस्तावना
16.2 हमारी जानकारी के स्रोत
16.3 समाज
- 16.3.1 क्षत्रिय
- 16.3.2 ब्राह्मण
- 16.3.3 वैश्य और गहपति
- 16.3.4 शुद्र
- 16.3.5 घुमक्कड़ सन्यासी
- 16.3.6 स्त्रियों की दशा

16.4 अर्थव्यवस्था
- 16.4.1 खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था के विकास के कारण
- 16.4.2 ग्रामीण अर्थव्यवस्था
- 16.4.3 शहरी अर्थव्यवस्था
- 16.4.4 शहरी व्यवसाय
- 16.4.5 व्यापार और व्यापारिक मार्ग

16.5 सारांश
16.6 शब्दावली
16.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

16.0 उद्देश्य

इस इकाई में मुख्य रूप से उन सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों का विवरण किया गया है जिन्होंने इस काल में ठोस रूप ग्रहण किया।

इस इकाई को पढ़ने के बाद आप इस काल के समाज और अर्थव्यवस्था के विषय में निम्न बातें समझ सकेंगे:

- समाज के मुख्य अंग, सामाजिक व्यवस्था और शुद्रों के ऊपर लगाए गए नियंत्रण,
- खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था के विकास के प्रमाण एवं कारक तत्व,
- ग्रामीण एवं शहरी अर्थव्यवस्था की मुख्य विशेषताएं, और
- इस काल की मुख्य दस्तकारियां तथा व्यवसाय और व्यापार की प्रकृति एवं व्यापारिक मार्ग।

16.1 प्रस्तावना

इससे पहले कि हम छठी सदी ई. पू. के चौथी सदी ई. पू. तक होने वाले सामाजिक-आर्थिक परिवर्तनों के मुख्य आयामों के विषय में विस्तृत रूप से चर्चा करें, यह अनिवार्य है कि प्रस्तावना के रूप में उन बिन्दुओं का संक्षेप में विवरण करें जिनके विषय में पिछली इकाइयों में आप पढ़ चुके हैं।

प्रथम, ऐसा प्रतीत होता है कि उत्तर वैदिक काल में कृषि अर्थव्यवस्था के ठोस आधार ग्रहण करने के साथ-साथ नये भौगोलिक क्षेत्र अर्थात् ऊपरी और मध्य गंगा घाटी क्षेत्र की ओर वैदिक कालीन संस्कृति का फैलाव हो गया था। दूसरे, समाज में शासकों और एक ऐसे वर्ग का उदय होना था जो स्वयं किसी प्रकार का उत्पादन नहीं करता था, बल्कि समाज के अन्य वर्गों द्वारा किए गए उत्पादन का उपभोग करता था। समाज में असमानता को संस्थागत रूप दे दिया गया। संस्थागत असमानता का तात्पर्य राज्य और उसकी व्यवस्था की स्थापना होना था। इसी के साथ समाज को चार वर्णों में विभाजित करने वाले सिद्धान्त का और अधिक कड़ा होना था क्योंकि वर्ण सिद्धान्त ने यह स्पष्ट किया कि समाज के विभिन्न वर्ग किस प्रकार अपने कर्तव्यों को पूरा कर सकते थे।

16.2 हमारी जानकारी के स्रोत

हमारे पास ऐसे विभिन्न प्रकार के साहित्यिक ग्रंथ हैं जो छठी सदी ई. पू. से चौथी सदी ई. पू. तक के समाज एवं अर्थव्यवस्था के विषय में जानकारी उपलब्ध कराते हैं। ऐसे बहुत से ब्राह्मणिक ग्रंथ हैं जो दिन-प्रतिदिन के संस्कारों एवं अनुष्ठानों को सम्पन्न करने के तरीके लोगों को बताते हैं। उनको गृह-सूत्र, श्रोत सूत्र और धर्म सूत्र कहा जाता है। इनमें से कुछ ग्रंथ जैसे कि अपस्ताम्बा ग्रंथ इस काल से संबंधित है। पाणिनी की व्याकरण में इस समय के बहुत से सम्प्रदायों के संक्षिप्त संदर्भ मिलते हैं। फिर भी, इस काल की सूचना के लिए हमारे लिए बौद्ध धर्म से संबंधित ग्रंथ प्राथमिक स्रोत हैं। इनको पाली भाषा में लिखा गया है। प्रारंभिक बौद्ध धार्मिक ग्रंथों को छठी सदी ई. पू. से चौथी सदी ई. पू. के मध्य में लिखा गया।

उत्तरी काली पॉलिश वाले मृद्‌भांडों से संबंधित पुरातात्विक स्थलों का अध्ययन इस काल के समाज की काफी जानकारी प्रदान करते हैं।

16.3 समाज

छठी सदी ई. पू. का समाज एक ऐसा समाज था जो अति-महत्वपूर्ण परिवर्तन के दौर से गुजर रहा था। समाज में प्रचारक, राजकुमार और व्यापारी हमारा ध्यान आकर्षित करते हैं। यह वह काल था जबकि ऐतिहासिक भारत में प्रथम बार नगर अस्तित्व में आते हैं (इसके विषय में आप इकाई 15 में पढ़ चुके हैं)। यह वह समय भी था जब पढ़ाई-लिखाई की परम्परा का प्रारंभ हुआ। इस काल के अंत तक समाज में लेखन की कला को जान लिया गया था। प्राचीन भारत की प्रारंभिक लिपि को ब्राहमी लिपि कहा जाता है। लिखने की जानकारी ने बड़े स्तर पर ज्ञान का विस्तार किया। इससे पहले समाज में ग्रहण किए गए ज्ञान को कंठस्थ कराके एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी तक पहुँचाया जाता था। जिसमें यह संभावना बनी रहती थी कि कुछ समय बाद कुछ तथ्यों को भुला दिया जाएगा या परिवर्तित कर दिया जाएगा। लिखाई की कला की जानकारी प्राप्त हो जाने का तात्पर्य था कि ज्ञान को बिना तोड़-मरोड़े संग्रहित किया जा सकता था। इस तथ्य ने परिवर्तन की चेतना को और प्रबल बनाया क्योंकि सामाजिक व्यवस्था तथा विश्वासों में समय के परिवर्तन निहित थे। जब एक बार चीजों को लिख दिया गया तो बाद के काल में विचारों एवं विश्वासों में होने वाले परिवर्तन लोगों को साफ दिखाई दिए और पता चल सका कि परिवर्तन कब और क्यों हुए। आइये, अब समाज के उन वर्गों के विषय में पढ़ें, जिनको परिवर्तन के प्रवाह ने प्रभावित किया।

16.3.1 क्षत्रिय

तत्कालीन साहित्य में क्षत्रिय लोग समाज के सबसे अधिक महत्वपूर्ण और शक्तिशाली वर्ग के रूप में प्रकट होते दिखाई पड़ते हैं। बुद्ध और महावीर समाज के इसी समूह से संबंधित थे। ब्राह्मणिक ग्रंथों में क्षत्रियों की समानता योद्धा जाति के साथ की गई है। वर्ण व्यवस्था के

अंतर्गत क्षत्रियों का दूसरे स्तर की जाति के रूप में स्थान है। उनको समाज का शासक वर्ग माना जाता था। किन्तु, बौद्ध साहित्य में क्षत्रियों का दूसरा ही चित्र प्रस्तुत किया गया है। उनके विवाह के नियम दृढ़ एवं कठोर नहीं थे, जो किसी जाति की एक विशेषता होती है। उनको वैशाली एवं कपिलवस्तु जैसे गण संघों के शासक वर्गों का पूर्वज बताया गया है। उनको शाक्य, लिच्छवि, मल्ल आदि कहा गया। ये ऐसे सामाजिक समूह थे जो संयुक्त रूप से भूमि के स्वामी थे। उनकी भूमि पर खेती का कार्य गुलामों एवं मज़दूरों द्वारा किया जाता था जिनको दास तथा कर्मकार कहा जाता था। ऐसा लगता है कि वे ब्राह्मणिक अनुष्ठानों को भी नहीं करते थे। बौद्ध साहित्य में गण संघ के केवल दो सामाजिक समूहों के विषय में ही लिखा गया है और वे उच्च जाति एवं छोटी जाति हैं। इन गण संघों के क्षेत्र में समाज का विभाजन ब्राह्मणिक जातीय व्यवस्था के अनुसार चार भागों में होने के स्थान पर, केवल दोहरा था। ब्राह्मण और शूद्र इस विभाजन में नहीं थे। इन क्षत्रिय जातियों में बहुत-सी वैवाहिक प्रथाओं का प्रचलन था, जिसमें चचेरे भाई-बहन का आपस में विवाह भी सम्मिलित है। विवाह किसके साथ करें या किसके साथ न करें, इसके लिए वे बड़े सजग थे। ऐसा समझा जाता है कि शाक्य लोग इसी कारण समाप्त हो गए। एक कहानी के अनुसार प्रसनजित नामक कौशल के राजा ने किसी शाक्य लड़की से विवाह करने की इच्छा प्रकट की। शाक्य लोग इस प्रस्ताव की अवहेलना न कर सके। इसलिए उन्होंने एक शाक्य दास लड़की को कौशल नरेश के पास भेज दिया और जिसके साथ राजा ने विवाह कर लिया। इस कन्या से उत्पन्न होने वाली सन्तान राजसिंहासन की उत्तराधिकारी होती। जिस समय राजा को शाक्यों की इस चालाकी का पता लगा तो उसने क्रोध में उनको नष्ट कर दिया। यद्यपि कौशल का राजा और शाक्य दोनों क्षत्रिय थे, परन्तु उनके बीच वैवाहिक संबंधों की प्रथा नहीं थी। इससे संकेत मिलता है कि जिस रूप में हम जाति व्यवस्था को समझते हैं क्षत्रिय उस रूप में जाति नहीं थे। क्षत्रिय लोग अपने स्तर एवं वंशावली के लिए बड़ा अभिमान करते थे। शाक्य, लिच्छवि, मल्ल और इसी प्रकार के अन्य गण अपनी सभाओं में भाग लेने के अधिकार को पूर्ण सजगता के साथ सुरक्षित रखते थे परन्तु इन स्थानों पर अन्य लोगों को भाग लेने की आज्ञा नहीं देते थे। ये सभाएं उनके समाज की अधिकतर सामाजिक-आर्थिक समस्याओं के विषय में निर्णय करती थीं। वे न तो भूमि-कर देते थे और न ही उनके पास संगठित सेना होती थी। युद्ध के समय पूरा समाज हथियार लेकर युद्ध करता था।

कौसल, काशी आदि के राजाओं का कई स्त्रोतों में क्षत्रिय के रूप में विवरण आता है। ब्राह्मणिक ग्रंथों से भिन्न बौद्ध साहित्यिक ग्रंथ चार वर्णीय जातीय संरचना में क्षत्रियों को प्रथम स्तर पर रखते हैं। एक प्रवचन में महात्मा बुद्ध कहते हैं —"अगर क्षत्रिय सबसे निम्न स्तर तक पतित हो जाता है, वह तब भी सबसे अच्छा है और उसकी तुलना में ब्राह्मण निम्न है।" कुछ क्षत्रियों को विद्वान अध्यापकों एवं विचारकों की श्रेणी में रखा गया है इस प्रकार यह भी कहा जा सकता है कि क्षत्रियों के विषय में ब्राह्मणों की योद्धा जाति की अवधारणा को केवल ऊपरी व मध्य गंगा घाटी के कुछ राजतंत्र परिवारों के विषय में लागू किया जा सकता था। वे विभिन्न प्रकार के कार्यों को करते थे, जैसे कि धर्म प्रचारक का कार्य, व्यापार एवं खेती की देख-भाल करने के कार्य आदि। विशेषकर पूर्वी भारत में क्षत्रियों का अस्तित्व जाति के रूप में नहीं था। बल्कि वहां पर विभिन्न सामाजिक समूह स्वयं को क्षत्रिय कहते थे।

16.3.2 ब्राह्मण

समकालीन साहित्य में ब्राह्मणों के विषय में जो संदर्भ मिलते हैं उनसे ऐसा प्रतीत होता है कि वे एक जाति समूह के रूप में थे। जो कोई ब्राह्मण परिवार में जन्म लेता, वह सदैव ब्राह्मण ही रहता। वह अपना व्यापार परिवर्तित कर सकता है, परन्तु वह सदैव ब्राह्मण ही रहता। ब्राह्मणिक ग्रंथों में उनको विशेषाधिकार दिया गया है कि वे ईश्वर व आदमी के बीच मध्यस्थता का काम करते हैं। बलि यज्ञों को सम्पूर्ण करने के लिए पूर्ण अधिकार उनके पास थे। यह गुट इस चेतना से ग्रस्त था कि वे ही सर्वश्रेष्ठ जाति के थे। वे ऐसे नियमों का पालन करते थे, जिससे कि अपवित्र भोजन एवं निवास स्थान से बचा जा सके। तत्कालीन ब्राह्मण ग्रंथ शतपथ ब्राह्मण में ब्राह्मणों के चार लक्षणों का उल्लेख है। ब्राह्मण कुल, उचित आचरण और व्यवहार, प्रसिद्दि की प्राप्ति और मनुष्य को शिक्षित करना। ऐसा होने के कारण वे कुछ विशेषाधिकारों का उपभोग करते थे। उनका सम्मान किया जाता था, उनको भेंट दी जाती थी

और उन्हें मृत्यु दण्ड नहीं दिया जा सकता था। बहुत से ब्राह्मणों ने सन्यासी एवं शिक्षक का जीवन व्यतीत किया। बौद्ध ग्रंथ सामान्यत: ब्राह्मण वर्ग के आलोचक हैं। इन्होंने इस कारण भी उनकी आलोचना की कि वे धार्मिक नैतिक जीवन से विमुख हो गए थे। उन्होंने आडम्बरपूर्ण अनुष्ठानों तथा ब्राह्मणों के लालचीपन की भी आलोचना की। बहुत से ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म को स्वीकार किया। इसलिए ऐसा पाया गया था कि महात्मा बुद्ध के प्रारंभिक अनुयायियों में सबसे अधिक संख्या ब्राह्मणों की थी। किन्तु पाली साहित्य में ऐसे विवरण भी हैं जिनसे पता लगता है कि ब्राह्मणों ने भी अन्य व्यापारों को अपनाया। दस ब्राह्मण जातक में एक कहानी का विवरण है जो हमें ब्राह्मणों के प्रति बौद्ध लोगों का दृष्टिकोण बताती है। कहानी इस प्रकार है, "प्राचीन काल में कुरू राज्य की राजधानी इन्द्रपट्ट थी और कुरू परिवार का राजा युधिटथिल था। उसको सांसारिक एवं आध्यात्मिक मामलों पर सलाह देने के लिए उसका एक मंत्री विधुर था ·······"। उसको बैठने के लिए स्थान देते हुए राजा ने कहा, "विधुर एक ऐसा ब्राह्मण खोजो जो सदाचारी एवं विद्वान हो, वह इन्द्रीय सुख का परित्याग कर चुका हो, उसको मैं उपहार भेंट करूंगा, उपहार, ओ मित्र, वह जहां भी हो उसकी खोज करो, उसको जो भी दिया जाएगा, उससे अति आनन्द की प्राप्ति होगी"।

"ऐ राजन, ऐसे ब्राह्मणों को खोज पाना अति कठिन है, जो सदाचारी एवं विद्वान हो, जो इन्द्रीय सुखों का परित्याग कर, आपके द्वारा दिए गए उपहारों से आनन्द ले सकें"।

"ऐ राजन, ब्राह्मणों के दस वर्ग हैं, वे विभिन्न प्रकार के हैं। उनको गुणों एवं वर्गीकरण के आधार पर इस प्रकार पाया जाता है, वे जड़ी-बुटियों को एकत्रित करते हैं, स्नान करते और श्लोकों का उच्चारण करते रहते हैं। ऐ राजन, वे स्वयं को ब्राह्मण कहते हुए भी एक चिकित्सक की भांति कार्य करते हैं, आप उनको जाते हैं। ऐ महान राजा। आप जिस प्रकार के ब्राह्मण चाहते हैं, उनको कैसे खोजा जाए।"

"कुरू कुल के राजा ने उत्तर दिया, वे विचरण करते रहते हैं" "वे छोटी घंटियां लिए आपके समक्ष आते हैं, जिससे वे अपना सन्देश देते हैं, और वे नौकरों की भांति चार पहियों की गाड़ियों को भी खींचना जानते हैं ········"

"वे एक जल का बर्तन और घुमावदार बेंत लेकर चलते हैं, राजाओं की पीठ पीछे वे विलक्षण लोगों की भांति गांव और देश के नगरों में विचरण करते हुए कहते हैं, अगर हमको कुछ न दिया गया तो हम गांव या जंगल को नहीं छोड़ेंगे। वे टैक्स इकट्ठा करने वालों के अनुरूप हैं ········।"

"शरीर पर लंबे बालों व लंबे नाखूनों के साथ, गंदे दांत, गंदे बाल, धूल और गंदगी से लथपथ, वे भिखारियों की भांति घूमते हैं। वे लकड़ी काटने वालों के अनुरूप हैं ········।"

"वे आंवला, आम और कटहल आदि फलों, मिस्री, सुगंधित वस्तुएं, शहद, उबटन और विभिन्न प्रकार की विक्रय-सामग्रियों को बेचते हैं। ऐ महाराज, वे व्यापारी के अनुरूप हैं ········।"

"वे खेती व व्यापार, दोनों करते हैं, वे बकरियों एवं भेड़ों को पालते हैं, उनके बच्चों को धन के लिए बेचते हैं, वे बेटी और बेटों के विवाहों का आयोजन करते हैं। वे अम्बाथ और वेस्स के अनुरूप हैं ········।"

"कुछ पुरोहित बाहर से लाये हुए भोजन का सेवन करते हैं, बहुत से लोग उनसे पूछते हैं (शकुन के लिए), वे पशुओं को बधिया करते हैं और शकुन के चिन्हों को तैयार करते हैं। वहां पर भेड़ों को काटा जाता है (पुरोहितों के घरों में), वे भैंस, सुअर एवं बकरी काटने वालों के अनुरूप हैं ········।"

"तलवार को हथियार के रूप में धारण किए और चमकती कुल्हाड़ी को हाथ में लिए, वे वेस्स की सड़क (व्यापार वाली सड़क) पर खड़े रहते हैं, वे काफिलों का नेतृत्व करते चलते हैं (उबड़-खाबड़ सड़कों पर से)। वे गायों के झुंड एवं निषादों के अनुरूप हैं ········।"

"वे जंगल में झोंपड़ियों के घर बनाते हैं, वे ऐसे जालों को निर्मित करते हैं जिनसे हिरणों, बिल्लियों, छिपकलियों, मछलियों और कछुओं का वे वध करते हैं। वे शिकारी हैं ········।"

"राजा के पलंग के नीचे ही वे धन के लिए झूठ बोलते हैं, सोमरस की प्रस्तुति तैयार के बाद ही वे स्नान करते हैं। स्नान कराने वालों के अनुरूप ही हैं ....।"
(व्यक्तियों तथा स्थानों के नाम और उच्चारण मूल स्रोत पर आधारित हैं।)

यह कहानी ब्राह्मणों के द्वारा किए जाने वाले विभिन्न कार्यकलापों का चित्रण प्रस्तुत करती है। यह हमें समकालीन समाज में होने वाले विभिन्न व्यवसायों की भी एक झलक प्रदान करती है। वे अपने व्यवसायों में परिवर्तन करने के बावजूद भी अकाट्य रूप से ब्राह्मण समझे जाते थे। वे अपनी जातीय पहचान को नहीं खोते थे। ऐसे विवरण मिलते हैं जिनके अनुसार विद्वान ब्राह्मण अद्वितीय थे। ऐसे भी विवरण हैं, जिनके अनुसार ब्राह्मण कृषक थे, जो अपनी खेती स्वयं करते थे या गुलामों तथा नौकरों की मदद से कराते थे। किन्तु, उनकी मुख्य पहचान एक दिव्य जाति के रूप में पहले ही स्थापित हो चुकी थी।

16.3.3 वैश्य और गहपति

ब्राह्मणिक वर्ण व्यवस्था में वैश्य अनुष्ठानिक क्रम में तीसरे स्थान की जाति थे। उनका मुख्य कार्य पशुओं को पालना, कृषि करना तथा व्यापार करना था। दूसरी ओर, बौद्ध साहित्य में गहपति शब्द का प्रयोग प्रचुरता के साथ किया गया है। गहपति का शाब्दिक अर्थ है कि घर का स्वामी। यह समुदाय भूमि का स्वामी था और ये परिवार श्रम, दासों और नौकरों के श्रम से अपनी भूमि पर खेती करते थे। ऐसा प्रतीत होता है कि उनकी उत्पत्ति वैदिक साहित्य में वर्णित राजनय और विश् गुटों से हुई थी। उनकी उत्पत्ति सम्पत्ति पर परिवार एवं व्यक्तिगत स्वामित्व के उद्भव की ओर संकेत करती है। इससे पहले के काल में सम्पत्ति पर सम्पूर्ण कबीले का संयुक्त स्वामित्व था। बौद्ध साहित्य में गहपति शब्द के अतिरिक्त अनेकों प्रकार के व्यवसायों और व्यापारियों का विवरण मिलता है, जिसका वर्गीकरण ब्राह्मणिक ग्रंथों में वैश्यों के रूप में किया गया। उनमें से प्रत्येक अपने कुटुम्बीय समूह से निकटता से संबंधित था और अंतर्जातीय विवाह नहीं करते थे। उनकी पहचान को उनके द्वारा किए जाने वाले व्यवसायों एवं उनकी स्थानीय भौगोलिकता के आधार पर ही निर्धारित किया जाता था। परन्तु ब्राह्मणिक ग्रंथों में जिस प्रकार से वैश्य जाति का चित्रण किया गया है, उस रूप में यह जाति कभी भी विद्यमान नहीं थी। इसकी अपेक्षा बहुत से समूह जातियों के रूप में बन गए। अब हम उन समूहों का अध्ययन करेंगे।

जैसा कि पहले ही बताया जा चुका है कि गहपति भू-स्वामियों के एक मुख्य वर्ग के रूप में थे, विशेष रूप से ध्यान देने की बात यह है कि यह गण संघों में बहुत कम मिलते हैं क्योंकि वहां पर भूमि का स्वामित्व क्षत्रिय वंशावलियों के पास था। इनका विवरण प्रचुरता के साथ मध्य गंगा घाटी के राजतंत्रों में मिलता है। वे कृषि संसाधनों का मुख्य उपभोग करने वाले थे और राजाओं के लिए लगान के स्रोत थे। गहपतियों में वे धनी लोग भी सम्मिलित थे जो बढ़ईगिरी, दवाई आदि के व्यवसायों से जुड़े थे। पाली ग्रंथों में एक दूसरे शब्द कुटुम्बिका का प्रयोग परिवार (कुटुम्ब) के स्वामी के पर्यायवाची शब्द के रूप में किया गया है। उनको धनी भू-स्वामी, साहूकार या अनाज का व्यापार करते हुए दिखाया गया है।

यह धनी भू-स्वामियों का ही वर्ग था जिससे कि कुछ धनी व्यापारियों का विकास हुआ। गहपतियों का विवरण व्यापारिक नगरों में भी किया गया है। सम्पत्ति पर व्यक्तिगत स्वामित्व और ब्राह्मणवाद के कमज़ोर प्रभाव के कारण गहपतियों ने अपनी सम्पत्ति का उपभोग व्यापार में किया। पश्चिमी गंगा घाटी में इस सम्पत्ति का उपभोग बलि यज्ञों के लिए किया जाता होगा। भू-स्वामी और व्यापार की इस तरह की दो शाखाएं हो जाने से सेठी वर्ग की उत्पत्ति हुई। सेठी का शाब्दिक अर्थ है "वह व्यक्ति जिसके पास सर्वश्रेष्ठ है" सेठी-गहपति का अर्थ था बहुत धनी व्यापारी या साहूकार जिसके राजा से निकट के संबंध थे। अनाथपिण्डिका, जिसने श्रावस्ती में बुद्ध को जेतावन दिया ऐसा ही अमीर सेठी था। बनारस के एक सेठी का विवरण मिलता है जो व्यापार करता था और उसके पास 500 गाड़ियों का काफिला था। सिक्कों के प्रचलन के साथ उनका साहूकारी का पेशा ज़ोर-शोर से चला। समकालीन साहित्य में शातामना, कर्षपण आदि नाम के सिक्कों का विवरण मिलता है। पुरातात्विक खुदाई से भी पता चलता है कि उस समय सिक्के प्रचलन में आ चुके थे। दूर-दराज के क्षेत्रों के साथ व्यापार के भी विवरण मिलते हैं।
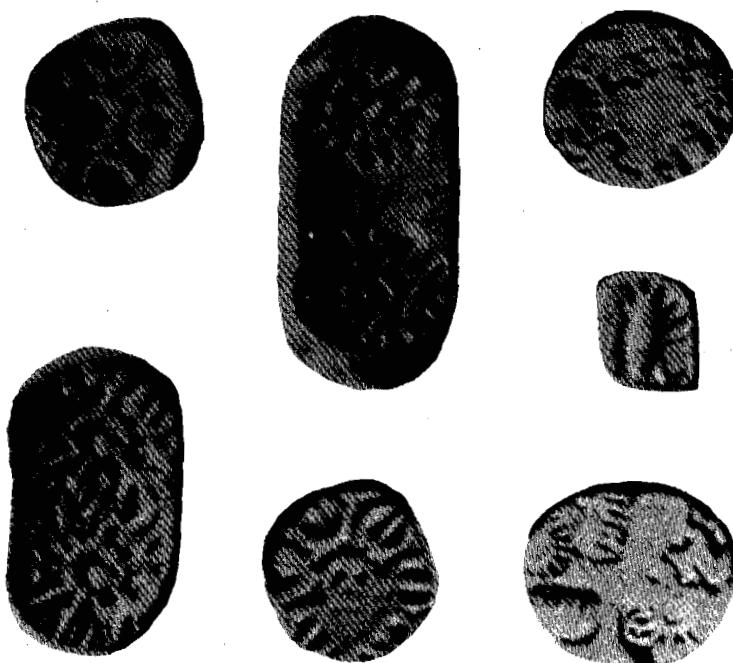
चित्र 6 छठी शताब्दि ई. पू. के सिक्के

बड़े व्यापारियों और भू-स्वामियों के अतिरिक्त छोटे व्यापारियों का भी विवरण मिलता है। इनमें फुटकर दुकानदार, व्यापारी, फेरी करके बर्तन बेचने वाले, बढ़ई, हाथी दांत की वस्तुएं बनाने वाले, माला बनाने वाले और धातु का काम करने वाले आदि शामिल हैं। इन लोगों ने अपने व्यावसायिक संघ बना लिए थे। परिवार के सदस्यों के अतिरिक्त कोई और वह व्यवसाय नहीं कर सकता था। कार्यों का यह स्थानीय विभाजन और व्यवसायों की निश्चित परिवार में सीमित रहने की परम्परा ने इन्हें व्यवसायिक श्रेणियों या शिल्पी संघों का रूप दिया। इन संघों का एक मुखिया होता था जो उनके हितों की देखभाल करता था। राजा का यह कर्तव्य समझा जाता था कि वह श्रेणी संघों के नियमों को स्वीकार करे और उनकी रक्षा करे। श्रेणी संघों का संगठित रूप यह बताता है कि व्यापार और उद्योग काफी विकसित थे। इससे यह भी पता चलता है कि व्यवसायों पर आधारित कुछ समूह अस्तित्व में आ गए थे और अपने व्यवसायों से ही पहचाने जाते थे। यह समूह एक जाति की ही भांति थे। समूहों के अंदर ही विवाह संबंध किए जाते थे। समूह के नियम भी नहीं बदले जा सकते थे।

16.3.4 शूद्र

ब्राह्मणिक व्यवस्था में शूद्र सबसे निम्न स्तर पर समझे जाते थे। अन्य तीनों वर्णों की सेवा करना ही उनका कर्तव्य था। ब्राह्मणिक ग्रंथों के अलावा अन्य ग्रंथ बहुत से ऐसे गरीब और दलित समूहों की चर्चा करते हैं जो शूद्र कहे जाते थे। पाली साहित्य में बहुधा दास और कामगार (मज़दूरी पाने वाले) लोगों का विवरण आता है। दलित शब्द का प्रयोग ऐसे लोगों के लिए होता है जो बहुत गरीब थे और जिनके पास खाने के लिए या तन ढंकने के लिए कुछ नहीं होता था। इस तरह पहली बार हमें विलासिता में रहने वाले धनी और अत्यंत गरीब, दोनों के बारे में विवरण मिलता है। समाज के कुछ समूहों का अत्यंत गरीब होना तथा शूद्र वर्ण के अस्तित्व में आने का कारण शायद यह था कि समाज के धनी और शक्तिशाली वर्ग ने भूमि और अन्य संसाधनों पर अधिकार कर लिया था। सभी तरह के संसाधनों के अभाव में शूद्र वर्ग के लोग दूसरों की सेवा और धनी लोगों की भूमि पर काम करने के लिए मजबूर थे। सामान्यत: कारीगर और दस्तकार भी शूद्रों की श्रेणी में मान लिए जाते थे। अधिकतर धर्मसूत्र शूद्रों के विभिन्न समूहों के उदय के लिए संकीर्ण जाति की परिकल्पना को उत्तरदायी मानते

हैं। इस संकल्पना के अनुसार अगर कोई अंतर्जातीय विवाह करेगा तो उसके वंशज निम्न जाति के होंगे। कर्मकाण्डों के लिये यह लोग सामाजिक व आर्थिक स्तर में किसानों, दासों और कारीगरों की तरह थे। वैदिक समाज के कुटुम्बीय संबंधों के अंत से यह वर्ण सबसे अधिक हानि में रहा।

समकालीन साहित्य में दासुद्वा का काफी विवरण मिलता है। यह ऐसे दास थे, जिनकी कोई वैधता नहीं थी। शूद्र मजदूर अधिकांशतया युद्धबंदी होते थे अथवा ऐसे लोग थे जो ऋण वापस नहीं कर पाते थे। धनी लोगों की भूमि पर उनसे जबरदस्ती काम कराया जाता था। ग्रामीण क्षेत्रों में दास, कर्मकार तथा कसक (कृषक) मज़दूरों के प्रमुख स्रोत थे। नगरों के अस्तित्व में आने से अमीर और गरीब के बीच की खाई और बढ़ गई।

उपरोक्त समूहों के अतिरिक्त बुद्ध के काल की सामाजिक श्रेणियों की सूची बहुत लम्बी है। घुमक्कड़ नाचने और गाने वाले, जो एक गांव से दूसरे गांव घूमते फिरते थे, अपनी कला का प्रदर्शन करते थे। इनके अतिरिक्त करतब और हाथ की सफाई दिखाने वाले, मसखरे, हाथी के करतब दिखाने वाले, सूत्रधार, सैनिक, लेखक, धनुर्धारी, शिकारी और नाई आदि कुछ ऐसे सामाजिक समूह हैं जिनके विषय में हमें जानकारी मिलती है। इनको समकालीन जातीय श्रेणियों में रख पाना कठिन है। शायद यह वर्ण व्यवस्था के बाहर थे। इनमें से अधिकतर कृषि पर आधारित नये समाज के प्रभाव क्षेत्र से बाहर थे। सामान्यत: उन्हें घृणा की दृष्टि से देखा जाता था। कभी-कभी यह समूह विद्रोह भी करते थे। जातक कथाओं में युद्धों के विवरण भरे पड़े हैं।

गरीब शूद्रों के शहर के बाहर निवास करने का विवरण मिलता है। इसका सीधा प्रभाव यह पड़ा कि छुआछूत अस्तित्व में आया। चाण्डाल अलग गांवों में रहते थे। उन्हें अत्यधिक अछूत माना जाता था। यहां तक कि एक सेठी की लड़की को चाण्डाल देखने पर अपनी आंखे धोनी पड़ी। इसी प्रकार एक ब्राह्मण इस बात से चिन्तित था कि चाण्डाल के शरीर को छूने वाली हवा अगर उसे छू गई तो वह (ब्राह्मण) अपवित्र हो जाएगा। चाण्डाल लोग केवल मरे हुए आदमी के शरीर से उतारे वस्त्र पहन सकते थे और टूटे हुए बर्तनों में खाना खा सकते थे। पुक्कुस, निषाद और वेन इसी प्रकार के अन्य घृणित समूहों में आते थे। राजा के शासक के रूप में रहने का समर्थन यह कहकर किया जाता था कि वह लूटमार करने वालों कबीलाइयों से जन-मानस की रक्षा करता था। यह वह पिछड़े हुए कबीले थे जो जंगलों में रहते थे और वहां से खदेड़े जाते थे। वे या तो दास बन जाते थे या डाकू। समकालीन साहित्य में डाकुओं के गांवों का भी वर्णन आता है।

16.3.5 घुमक्कड़ सन्यासी

इस काल का एक प्रमुख समूह परिव्राजक और श्रमण का था। यह वह लोग थे जिन्होंने अपने घर त्याग दिए थे। यह लोग एक स्थान से दूसरे स्थान पर घूमते रहते थे और जीवन के अर्थ, समाज और आध्यात्मिकता पर चर्चा करते थे। महावीर और बुद्ध इसी प्रकार के लोगों में थे।

16.3.6 स्त्रियों की दशा

छठी शताब्दि ईसा पूर्व के समाज और अर्थव्यवस्था के परिवर्तनों ने स्त्रियों की स्थिति को भी प्रभावित किया। चूंकि पिता की सम्पत्ति पर पुत्र को अधिकार प्राप्त होता था इसलिए व्याभिचार रोकने पर बहुत जोर दिया जाता था। समकालीन साहित्य में स्थान-स्थान पर कहा गया है कि राजा के दो प्रमुख कर्तव्य हैं — सम्पत्ति और परिवार की मर्यादा का उल्लंघन करने वालों को दंड देना। निरीह दास की भांति रहने वाली पत्नी को आदर्श पत्नी कहा जाता था। परन्तु यह बात मुख्यत: अमीर लोगों की पत्नियों पर लागू होती थीं। उनके लिए पत्नी वैध सन्तान को जन्म देने का साधन मात्र थी। परन्तु साथ ही ऐसी महिलाओं की संख्या भी बहुत बड़ी थी जो अपने स्वामी और स्वामिनियों की सेवा करने में सम्पूर्ण जीवन व्यतीत कर देती थीं। महिलाओं को आदमियों की तुलना में हेय दृष्टि से देखा जाता था। उन्हें किसी भी सामान्य सभा में बैठने के योग्य नहीं समझा जाता था। स्त्रियों को हमेशा पिता, भाई अथवा पुत्र के नियंत्रण में रहना होता था। संघ (बौद्ध) में भी उन्हें पुरुषों से नीचा समझा जाता था।

बोध प्रश्न 1

1) दस ब्राह्मण जातक की कथा से आप किस प्रकार का निष्कर्ष निकाल सकते हैं ? पांच पंक्तियों में अपना उत्तर लिखिए।

....

....

....

....

....

2) ब्राह्मणों और क्षत्रियों में क्या असमानताएं हैं ?

....

....

....

....

....

3) बुद्ध के काल में शूद्रों की पतनशील दशा का वर्णन कीजिए।

....

....

....

....

....

....

16.4 अर्थव्यवस्था

हमने देखा कि राज्य तंत्र की स्थापना और समाज में श्रेणीबद्धता, दोनों प्रक्रियाएं पहली सहस्राब्दि ई. पू. के मध्य तक काफी महत्वपूर्ण स्थान ले चुकी थी। यह दोनों प्रक्रियाएं, जो आपस में संबंधित थी, इसलिए अस्तित्व में आई क्योंकि नई कृषि व्यवस्था कृषकों को जीवन यापन के साधन प्रदान कर सकी। साथ ही यह समाज के उस वर्ग को भी, जो सीधे कृषि से जुड़ा हुआ नहीं था, यह साधन उपलब्ध करा सकी। छठी-पांचवी शताब्दि ई. पू. की आर्थिक दशा पर प्रकाश डालने वाले साहित्यिक और पुरातात्विक स्रोत उस काल के बढ़े हुए कृषि उत्पादन को पुष्ट करते हैं (इन स्रोतों का उल्लेख इकाई-17 में किया गया है)। इसके अतिरिक्त:

1) पूर्णतया दान-दक्षिणा पर आधारित मठ-व्यवस्थाओं का विकास भी अधिक कृषि उत्पादन को दर्शाता है।

2) अगर कृषि उत्पादन इतना न होता कि समाज के अन्य वर्गों की खाद्य आवश्यकताओं की पूर्ति न कर पाता तो सोलह महाजनपद, उनके महत्वपूर्ण नगर और स्थायी सेनाओं का अस्तित्व संभव नहीं होता।

3) साथ ही इस काल में ऐसे प्रमुख नगर बन चुके थे जो व्यापार मार्गों पर स्थित थे तथा जिनमें विविध प्रकार के उच्च स्तर के व्यवसाय थे। नदी घाटियों के विशाल मैदानी क्षेत्रों में ऐसे नगरों का होना भी कृषि द्वारा अधिक खाद्य उत्पादन का सबूत है।

आइए, इस काल के आर्थिक जीवन के कुछ महत्वपूर्ण पहलुओं पर दृष्टि डालें।

16.4.1 खाद्य उत्पादक अर्थव्यवस्था के विकास के कारण

आइए पहले यह देखें कि इस बढ़े हुए कृषक और खाद्य उत्पादन के लिए कौन से तत्व उत्तरदायी थे। समकालीन स्रोतों का अध्ययन निम्न कारकों को दर्शाता है:

1) छठी शताब्दि ई. पू. के बाद के काल में लोहे के औज़ारों ने गंगा के मैदानों में जंगलों को साफ करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इस क्षेत्र के बड़े भूभाग में धान, गेंहू, जौ और बाजरे की खेती होती थी।

2) बौद्ध लोग पशुओं की रक्षा पर बहुत बल देते थे। सुत्तनिपत के अनुसार पशुओं को नहीं मारना चाहिए क्योंकि वह अनाज प्रदान करते हैं। इस प्रकार, कृषि कार्यों के लिए पशुओं की रक्षा करने पर बल दिया जाता था।

3) उत्तर वैदिक काल की तुलना में बुद्ध के काल में अधिक अनाज के उत्पादन का एक कारण रोपाई द्वारा धान की पैदावार करना था।

4) धान अथवा चावल का उत्पादन करने वाली अर्थव्यवस्था की कमी की पूर्ति के लिए पशु-पालन और शिकार किया जाता था। यह उनकी अर्थव्यवस्था का एक प्रमुख साधन और जीवन यापन का स्रोत था। अनेकों पुरातात्विक स्थलों से मवेशी, भेड़, बकरी, घोड़े और सुअर की हड्डियां बड़ी मात्रा में प्राप्त हुई हैं। पशुओं का उपयोग केवल हल चलाने और सामान ढोने के लिए ही नहीं होता था, बल्कि समाज का एक वर्ग संभवत: मासांहारी भी था।

चित्र 7 कृषि में प्रयोग होने वाले औज़ार

16.4.2 ग्रामीण अर्थव्यवस्था

शहरों के आस पास की उपजाऊ भूमि की अधिक उपज के कारण व्यवसाय भी विकसित हुए। भरण पोषण पर आधारित अर्थव्यवस्था का बाज़ार की अर्थव्यवस्था में संक्रमण हो रहा था। सिक्कों के प्रचलन ने इस प्रक्रिया में बहुत योगदान किया। इसने अधिक गतिशीलता तथा व्यवसायों और व्यापार को विकास प्रदान किया तथा एक बड़े क्षेत्र में आर्थिक गतिविधियों को बढ़ाया। इस सबका परिणाम यह हुआ कि एक जटिल ग्रामीण और शहरी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।

बहुत से समकालीन साहित्यिक स्रोतों से यह जानकारी मिलती है कि बहुत से ग्रामीण केन्द्रों की अर्थव्यवस्था का अपना एक रूप था। विभिन्न ग्रामीण समुदायों के भूमि पर अधिकारों का विवरण मिलता है। पाली साहित्य में तीन प्रकार के गांवों का विवरण मिलता है:

1) ऐसे गांव जिनमें विभिन्न जातियों व समुदायों के लोग रहते थे। इस प्रकार के गांव अधिक थे।

2) अर्द्ध-शहरी गांव एक प्रकार के व्यावसायिक केन्द्र थे। यह अन्य गांवों के लिए एक बाज़ार का काम करते थे और शहरों तथा ग्रामीण क्षेत्रों के बीच सम्पर्क के रूप में कार्य करते थे।

3) जंगलों की सीमाओं पर स्थित गांव भी थे, जिनमें शिकारी तथा बहेलिये (चिड़ियां पकड़ने वाले) रहते थे। यह बहुत सरल जीवन व्यतीत करते थे।

घनी जनसंख्या वाले क्षेत्रों की अतिरिक्त जनसंख्या द्वारा नई बस्तियों की स्थापना से ग्रामीण अर्थव्यवस्था विकसित हुई। नष्ट हो रहे गांवों को फिर से बसाने ने भी इस अर्थव्यवस्था का विकास किया। नये स्थानों पर बसने के लिए राज्य द्वारा पशु, बीज, धन और सिंचाई के साधन प्रदान कराए जाते थे। इन लोगों को करों में छूट और अन्य सुविधाएं भी दी जाती थीं। अवकाश प्राप्त अधिकारियों और पुरोहितों को भी नये क्षेत्रों में भूमि प्रदान की जाती थी। इन क्षेत्रों की भूमि को बेचना, गिरवी रखना और उत्तराधिकार में देना मना था। चरागाहों पर सबका समान अधिकार था। इन गांवों की अपनी स्वतंत्र अर्थव्यवस्था थी। ग्रामीण क्षेत्रों का प्रमुख व्यवसाय खेती करना था। गांवों की अतिरिक्त उपज शहरों में पहुंचती थी तथा शहर आवश्यकता की अन्य वस्तुएं गांवों तक पहुंचाते थे।

खेती के प्रमुख व्यवसाय होने के साथ-साथ पशु-पालन, खेती से संबंधित छोटे कारीगर उत्पादन, जंगल और स्थानीय आवश्यकता के लिए पशुओं की आपूर्ति ग्रामीण अर्थव्यवस्था की अन्य विशेषताएं थीं।

16.4.3 शहरी अर्थव्यवस्था

शहरी अर्थव्यवस्था पर उन व्यापारियों तथा कारीगरों का प्रभाव था जो एक विस्तृत क्षेत्र के लिए वस्तुओं का भारी मात्रा में उत्पादन और विनिमय करते थे। शहरी अर्थव्यवस्था के विकास के लिए निम्न चीज़ें आवश्यक थीं।

- अतिरिक्त अन्न उत्पादन (जिसकी पूर्ति पास के गांवों से होती थी)
- विशिष्ट कारीगर उत्पादन
- व्यापारिक विनिमय के केन्द्र
- धातु मुद्रा का प्रचलन
- कानून और व्यवस्था स्थापित करने वाली राजनैतिक व्यवस्था
- पढ़ा-लिखा सामाजिक वर्ग।

शहरी अर्थव्यवस्था मुख्यत: दो कारकों पर निर्भर थी:

i) ऐसा औद्योगिक उत्पादन, जिसमें बहुत प्रकार के व्यवसायी और कारीगर लगे हुए थे।

ii) शहर का आंतरिक तथा अन्य शहरों के साथ व्यापार।

हम प्रत्येक का अलग-अलग अध्ययन करेंगे।

चित्र 8 प्राचीन शहर के बाज़ार की चित्रकार की परिकल्पना

16.4.4 शहरी व्यवसाय

शहरी व्यवसायों को दो श्रेणियों में बांटा जा सकता है। पहले वह जो उत्पादन की किसी न किसी प्रक्रिया से जुड़े थे और दूसरे वह जिनका किसी प्रकार के उत्पादन से कोई संबंध नहीं था। द्वितीय वर्ग मुख्यत: प्रशासनिक अधिकारियों का था और इसका अर्थव्यवस्था पर कोई सीधा प्रभाव नहीं पड़ता था। यह सेवाओं की श्रेणी में आता था। व्यापारी वर्ग भी इस श्रेणी में आता था, परन्तु वह वस्तुओं के वितरण और विनिमय द्वारा अर्थव्यवस्था में एक महत्वपूर्ण भूमिका निभाता था। उत्तरी भारत में अनेक स्थलों की खुदाई से प्राप्त मिट्टी के बर्तन (विशेषकर उत्तरी काली पॉलिश वाले), पकाई गई मिट्टी की मानव व पशु आकृतियां और खेल तथा मनोरंजन की वस्तुएं, हड्डी और हाथी दांत की वस्तुएं; सिक्के, पत्थर व शीशे की वस्तुएँ, मनके, तांबे और लोहे की वस्तुएं आदि अनेक प्रकार के कारीगर उत्पादन के साक्षी हैं। यह कारीगर उत्पादन निम्न वर्गों में बांटे जा सकते हैं:

1) मिट्टी के बर्तन बनाना, जिनमें पकाई गई मिट्टी की मानव व पशु आकृतियां और ईटें सम्मिलित हैं।
2) बढ़ईगिरी और लकड़ी की वस्तुओं का निर्माण
3) धातु कला
4) पत्थर तराशने की कला
5) कांच निर्माण कला
6) हड्डियों और हाथी दांत की वस्तुओं की कला
7) अन्य मिश्रित प्रकार के उद्योगों में माला बनाना, तीर व धनुष बनाना, कंघी, टोकरियां, इत्र, तेल व वाद्य यंत्र थे।

16.4.5 व्यापार तथा व्यापारिक मार्ग

विशिष्ट कारीगर उत्पादन के साथ व्यापार का विकास भी जुड़ा हुआ है। उस काल में देश के अंदर और विदेशों से व्यापार काफी फल-फूल रहा था। अनेक व्यापारी अनेकों वस्तुओं के व्यापार से समृद्ध हो रहे थे। सिल्क, मलमल. हथियार, सुगंधित द्रव्य, हाथी दांत, हाथी दांत

चित्र 9 सिक्कों पर बने हुये चिन्ह
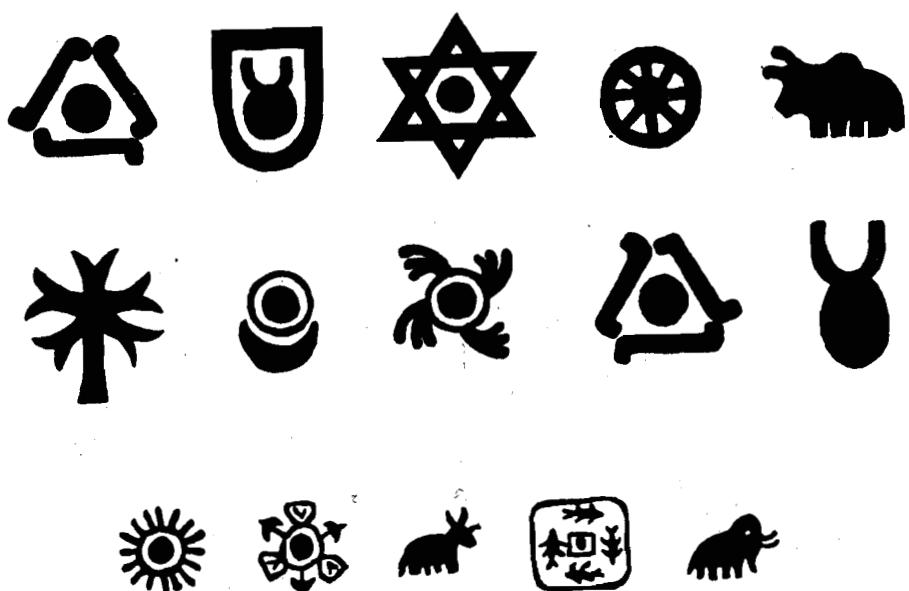
की वस्तुएं तथा जेवरात आदि थे। यह व्यापारी पूरे देश में नदी मार्गों से यात्रा करते थे और पूर्व में ताम्लुक और पश्चिम में भड़ौच से समुद्री यात्राओं से विदेशों में श्रीलंका और बर्मा तक जाते थे। देश के अंदर यह लोग कुछ निश्चित मार्गों का प्रयोग करते थे। इनमें से एक मार्ग श्रावस्ती से प्रतिस्थान (आधुनिक पैथन जो महाराष्ट्र में है) तक था, दूसरा मार्ग श्रावस्ती को राजगृह से जोड़ता था, तीसरा मार्ग हिमालय की तलहटी से घूमता हुआ तक्षशिला को श्रावस्ती से जोड़ता था, चौथा प्रमुख मार्ग काशी को पश्चिमी तटों से मिलाता था। नगर ही दूरस्थ व्यापार के प्रमुख केन्द्र थे। क्योंकि यह उत्पादन और वितरण के प्रमुख केन्द्र थे और अधिक सुरक्षित थे।

वस्तु-विनिमय के साथ-साथ अब विनिमय के नये तरीके सामने आ रहे थे। अब वस्तुओं के क्रय-विक्रय के लिए कहपण (कर्षापण) नामक सिक्का प्रचलन में आ गया था। यह चांदी और तांबे का सिक्का था जिस पर व्यापारी अथवा शिल्पी संघ की छाप रहती थी, जो इन सिक्कों के मानदंड का प्रतीक थी। बैंकों की परिकल्पना भी नहीं थी। अतिरिक्त धन से तो सोने के ज़ेवर आदि खरीदे जाते थे या इस धन को बर्तनों में रखकर ज़मीन में दबा कर रखा जाता था या किसी मित्र के पास सुरक्षित रख देते थे।

बोध प्रश्न 2

1) वह कौन-से प्रमुख कारक थे, जिन्होंने कृषि के विकास को प्रभावित किया ?

....
....
....
....
....
....
....

2) ग्रामीण अर्थव्यवस्था का विकास किस प्रकार हुआ ?

....
....
....
....
....
....
....

3) इस इकाई के अध्ययन काल के प्रमुख व्यापार मार्ग कौन-कौन से थे ?

....
....
....
....
....

16.5 सारांश

इस इकाई में आपने जो अध्ययन किया वह अधिकतर प्रारम्भिक पाली ग्रंथों और उत्तरी काली

पालिश वाले बर्तनों के काल के पुरातात्विक स्त्रोतों के आधार पर लिखा गया है। इसी काल में राज्य के गठन और सामाजिक श्रेणीबद्धता की प्रक्रिया अस्तित्व में आई और पहली सहस्त्राब्दि ई. पू. के मध्य तक इसने काफी महत्व प्राप्त कर लिया। समाज में चारों वर्णों, ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के सामाजिक कार्य कलापों पर नये सिरे से बल दिया गया उत्तर वैदिक काल अथवा सलेटी रंग के मृदभाण्डों की संस्कृति, जिसमें ब्राह्मण और क्षत्रिय मुख्य भूमिका निभाते थे, में कई परिवर्तन हुये। यह परिवर्तन विशेष कर व्यापारी या वैश्य वर्गों के कारण थे, जिन्होंने बढ़ते व्यापार से काफी धन कमा लिया था। शूद्रों पर तरह-तरह के नियंत्रण लगाये जा रहे हैं। खाद्यान्न का उत्पादन काफी बढ़ गया था। उत्पादन में वृद्धि के प्रमुख कारण लोहे के औज़ारों का प्रयोग, रोपाई द्वारा धान की खेती तथा धार्मिक आधार पर पशुओं की रक्षा करना था। सामान्य भरण पोषण पर आधारित अर्थव्यवस्था का स्थान अब बाजार अर्थव्यवस्था ने ले लिया था। व्यापार तथा धातु के सिक्कों के प्रचलन ने शहरी अर्थव्यवस्था का विकास किया। जहाँ एक ओर ग्रामीण अर्थव्यवस्था का आधार पशु पालन और भूमि, वन और पशु पालन से सम्बन्धित साधारण कारीगर उत्पादन था दूसरी ओर शहरी अर्थव्यवस्था पर बड़े वर्गों का प्रमुत्व था। इससे व्यापार और व्यापारिक मार्गों का विस्तार हुआ और एक जटिल ग्रामीण व शहरी अर्थव्यवस्था का विकास हुआ।

16.6 शब्दावली

वेस्स — पाली भाषा में "वेश्य" के लिये प्रयोग किया जाने वाला शब्द।

जेतावन — बुद्ध को एक व्यापारी द्वारा दान में दी गई वाटिका।

पुक्कुस, निषाद, वेन — तीन अछूत जातियाँ।

सुत्तनिपत —एक बौद्ध ग्रंथ।

जातक कथाएँ — बुद्ध के पिछले जन्मों से जुड़ी हुई कहानियों का संग्रह।

दस ब्राह्मण जातक — जातक कथाओं की एक पुस्तक का नाम।

16.7 बोध प्रश्नों के उत्तर

बोध प्रश्न 1

1) उपभाग 16.3.2 देखें। अपने उत्तर में आप को यह बताना चाहिए कि जातक के अनुसार कैसे ब्राह्मणों को अपना व्यवसाय चुनने की छूट थी और वे कौन-कौन से धन्धों में लगे थे।

2) उपभाग 16.3.1 देखें। आपके उत्तर में दोनों समूहों की वह भूमिका सम्मिलित होनी चाहिए जो समकालीन साहित्य में मिलती हैं इनके द्वारा किये जाने वाले विभिन्न क्रिया कलापों पर भी ध्यान दीजिये।

3) देखें उपभाग 16.3.4 आपको अपने उत्तर में यह दिखाना चाहिए कि किस प्रकार शक्तिशाली वर्गों द्वारा भूमि पर अधिकार, ऋणबद्धता, कानूनी अधिकार का अभाव, उच्च वर्ण के लोगों के जन्म की पवित्रता और शूद्रों के जन्म की अपवित्रता आदि शूद्रों की गिरती हुई दशा के लिये उत्तरदायी थे।

बोध प्रश्न 2

1) उपभाग 16.4.1 देखें। आप के उत्तर में बढ़े हुये कृषि उत्पादन के लिये उत्तरदायी तत्वों जैसे लोहे के औज़ारों का प्रयोग कृषि के लिये पशुधन की रक्षा और रोपाई द्वारा धान की

खेती आदि तथ्य सम्मिलित होने चाहिए।

2) उपभाग 16.4.2 देखें। आप अपने उत्तर में यह दिखायें कि नई बस्तियों की स्थापना से ग्रामीण अर्थव्यवस्था का किस प्रकार विकास हुआ।

3) उपभाग 16.4.5 देखें। आप अपने उत्तर में तमलूक और भड़ोच से बर्मा और श्री लंका के मार्गों की चर्चा करें साथ ही देश के चार आन्तरिक प्रमुख मार्गों — श्रावस्ती से प्रत्स्थिान, श्रावस्ती से राजगृह, तक्षिला से श्रावस्ती और काशी से पश्चिमी घाटों तक के विषय में भी लिखें।